सब मेरे चाहने वाले हैं, मेरा कोई नहीं

उर्दू पत्रकारिता की अहमियत से किसी भी सूरत में इंकार नहीं किया जा सकता. पत्रकारिता का इतिहास बहुत पुराना है. या यूं कहें कि जब से इंसानी नस्लों ने एक-दूसरे को समझना और जानना शुरू किया, तभी से पत्रकारिता की शुरुआत हो गई थी. उस वक़्त लोग एक-दूसरे से बातचीत के ज़रिये अपनी बात अपने रिश्तेदारों या जान-पहचान वालों तक पहुंचाते थे. बादशाहों के अपने क़ासिद होते थे, जो ख़बरों को दूर-दराज के मुल्कों के बादशाहों तक पहुंचाते थे. गुप्तचर भी बादशाहों के लिए ख़बरें एकत्रित करने का काम करते थे. बादशाहों के शाही फ़रमानों से अवाम में मुनादी के ज़रिये बात पहुंचाई जाती थी. फ़र्क़ बस इतना था कि ये सूचनाएं विशेष लोगों के लिए ही हुआ करती थीं. वक़्त गुज़रता गया, इसके साथ ही सूचनाओं का दायरा बढ़ता गया और तरीक़ा बदलता गया. कबूतरों ने भी संदेश या ख़बरें एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाने का काम किया. आज यही काम अख़बार, रेडियो, टेलीविज़न, इंटरनेट और मोबाइल के ज़रिये किया जा रहा है.

हाल में भोपाल स्थित माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के जनसंचार विभाग के प्रोफ़ेसर संजय द्विवेदी की उर्दू पत्रकारिता पर आधारित एक किताब उर्दू पत्रकारिता का भविष्य प्रकाशित हुई है. इसमें तहसीन मुनव्वर, फ़िरोज़ अशरफ़, डॉ. अख़्तर आलम, असद रज़ा, शाहिद सिद्दीक़ी, फ़िरदौस ख़ान, रघु ठाकुर, एहतेशाम अहमद ख़ान, डॉ. ए अज़ीज़ अंकुर, डॉ. मरज़िया आरिफ़, डॉ. हिसामुद्दीन फ़ारूक़ी, डॉ. आरिफ़ अज़ीज़, डॉ. राजेश रैना, शारिक नूर, इशरत सग़ीर, एज़ाज़ुर रहमान, संजय कुमार, डॉ. माजिद हुसैन, आरिफ़ ख़ान मंसूरी, डॉ. जीए क़ादरी, मासूम मुरादाबादी और धनंजय चोपड़ा आदि के उर्दू की हालत को बयां करते कई लेख शामिल हैं. उर्दू पत्रकारिता के मुद्दे पर हिंदी में किताब प्रकाशित करना, वाक़ई उर्दू की लोकप्रियता को दर्शाता है.

किताब के संपादक संजय द्विवेदी कहते हैं कि इस किताब के बहाने हमने एक छोटी शुरुआत की है, इस भरोसे के साथ कि उर्दू सहाफ़त के मुस्तक़बिल पर बातचीत किसी अंजाम तक पहुंचेगी ज़रूर. वह कहते हैं कि आज की उर्दू पत्रकारिता के मुद्दे देश की भाषाई पत्रकारिता के मुद्दों से अलग नहीं हैं. समूची भारतीय भाषाओं के सामने आज अंग्रेजी और उसके साम्राज्यवाद का ख़तरा मंडरा रहा है. कई भाषाओं में संवाद करता हिंदुस्तान दुनिया और बाज़ार की ताक़तों को चुभ रहा है. उसकी संस्कृति को नष्ट करने के लिए पूरे हिंदुस्तान को एक भाषा (अंग्रेज़ी) में बोलने के लिए विवश करने के प्रयास चल रहे हैं. अपनी मातृभाषा को भूलकर अंग्रेज़ी में गपियाने वाली जमातें तैयार की जा रही हैं, जिनकी भाषा, सोच और सपने सब विदेशी हैं. अमेरिकी और पश्चिमी देशों की तरफ़ उड़ान भरने को तैयार यह पीढ़ी अपनी जड़ों को भूल रही है. उसे ग़ालिब, रहीम, रसखान, सूर, कबीर, तुलसी, मीरा, मलिक मोहम्मद जायसी की बजाय पश्चिमी धुनों पर थिरकाया जा रहा है. जड़ों से विस्मृत होती इस पीढ़ी को मीडिया की ताक़त से बचाया जा सकता है. अपनी भाषाओं, ज़मीन और संस्कृति से प्यार पैदा करके ही देशप्रेम से भरी पीढ़ी तैयार की जा सकती है. उर्दू पत्रकारिता की बुनियाद भी इन्हीं संस्कारों से जुड़ी है. उर्दू और उसकी पत्रकारिता को बचाना दरअसल एक भाषा भर को बचाने का मामला नहीं है, वह प्रतिरोध है बाज़ारवाद के ख़िलाफ़, प्रतिरोध है उस अधिनायकवादी मानसिकता के ख़िलाफ़ जो विविधताओं को, बहुलताओं को, स्वीकारने और आदर देने के लिए तैयार नहीं है. यह प्रतिरोध हिंदुस्तान की सभी

भाषाओं का है, जो मरने के लिए तैयार नहीं हैं. वे अंग्रेज़ी के साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ डटकर खड़ी हैं और खड़ी रहेंगी.

उर्दू के भविष्य को लेकर जहां कुछ लोग फ़िक्रमंद नज़र आते हैं, वहीं ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है, जो उर्दू के मुस्तक़बिल को रौशन मानते हैं. वरिष्ठ पत्रकार और शायर तहसीन मुनव्वर कहते हैं कि फ़िल्में हों या टीवी धारावाहिक सब जगह उर्दू की ज़रूरत है. इसलिए यही कहा जा सकता है कि उर्दू पत्रकारिता का भविष्य रौशन है, मगर सवाल इस बात का है कि जिनके हाथ में यह भविष्य है, वह रौशन ज़ेहन और रौशन क़लम और क़लम के धनी हैं कि नहीं ? इसी तरह आकाशवाणी केंद्र भोपाल में संवाददाता शारिक नूर कहते हैं कि यदि उर्दू मीडिया के उजले पक्ष को देखा जाए, तो यह पीत पत्रकारिता से काफ़ी हद तक दूर है. केंद्र सरकार और कुछ अन्य मीडिया समूह उर्दू चैनल्स लाए हैं. उर्दू अख़बारों की बेवसाइट्स और ई-संस्करण हैं. हिंदी के कुछ अख़बार भी उर्दू भाषियों को आकर्षित करने के लिए उर्दू पन्ने प्रकाशित कर रहे हैं. भोपाल से प्रकाशित होने वाला एक हिंदी अख़बार उर्दू अदब नाम से हिंदी का पन्ना प्रकाशित करता है, तो एक अन्य मीडिया समूह रविवार के दिन फ़ारसी लिपि में ही उर्दू का एक पृष्ठ दे रहा है. इससे तो यही संकेत मिलता है कि उर्दू पत्रकारिता के लिए माहौल साज़गार है.

हिंदुस्तान में उर्दू मीडिया का भविष्य बहुत उज्जवल है, बशर्ते इस दिशा में गंभीरता से काम किया जाए. मौजूदा दौर में उर्दू अख़बारों के सामने कई मुश्किलें हैं. इस मुल्क में उर्दू के हज़ारों अख़बार हैं, लेकिन ज़्यादातर अख़बारों की माली हालत अच्छी नहीं है. उर्दू के पाठक कम होने की वजह से अख़बारों की प्रसार संख्या भी सीमित है. उर्दू अख़बारों को साल में गिने-चुने दिनों में ही विज्ञापन मिल पाते हैं. उर्दू अख़बारों को यह भी शिकायत रहती है कि सरकारी विज्ञापन भी उन्हें बहुत कम मिलते हैं. इसके अलावा क़ाग़ज़ की बढ़ती क़ीमतों ने अख़बारों के लिए मुश्किलें ही पैदा की हैं.

उर्दू मूल रूप से तुर्की भाषा का शब्द है. इसका मतलब है-शाही शिविर या ख़ेमा. तुर्कों के साथ यह शब्द भी हिंदुस्तान आया. उर्दू भारतीय संघ की 18 भाषाओं में से एक है. उर्दू के लिए फ़ारसी लिपि का इस्तेमाल किया जाता है, लेकिन कुछ ऐसी पत्रिकाएं भी हैं, जिनकी लिपि फ़ारसी न होकर हिंदी है. फ़िलहाल देश में उर्दू की हालत को बयान करने के लिए यह शेअर काफ़ी है-
सब मेरे चाहने वाले हैं, मेरा कोई नहीं
मैं भी इस मुल्क में उर्दू की तरह रहता हूं
बहरहाल, यह किताब उर्दू पत्रकारिता पर आधारित एक बेहतर दस्तावेज़ है. संजय द्विवेदी कहते हैं कि यह किताब देवनागरी में प्रकाशित की जा रही है, ताकि हिंदी भाषी पाठक भी उर्दू पत्रकारिता के स्वर्णिम अतीत और वर्तमान में उसके संघर्ष का आकलन कर सकें. बेशक, इस बेहतरीन कोशिश के लिए संजय द्विवेदी मुबारकबाद के मुस्तहक़ हैं.

समीक्ष्य कृति : उर्दू पत्रकारिता का भविष्य
संपादक : संजय द्विवेदी
प्रकाशक : यश पब्लिकेशंस, दिल्ली
क़ीमत : 295 रुपये